डॉ. अनुपमा तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय,बंगलूरू
कर्नाटक, भारत
ईमेल – anupama.tiwari@alliance.edu.in
मो. 8886995593/ 8142623426

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की सरल शिक्षण विधि के स्रोत

आज बहुल मात्रा में, भारतीयता अपने अस्तित्वबोध से कटकर विलासितापूर्ण जीवन पाने, एवं स्व संस्कृति को हीन और पर संस्कृति को भव्य मानते हुये अनजाने में ही सही बड़े कॉर्पोरेट्स के शिकंजे में फंसते जा रही है। नव उदारवादी नीतियों के कारण जो बेरोजगारी पहले ही चालीस वर्षों में अधिकतम हो चुकी थी, कोरोना और उससे मुक्ति पाने की नाकाम प्रयत्नों के कारण स्थिति आज और भी भयावह स्तर पर विद्यमान है। कोरोना के कहर में जहां स्व और भविष्य की चिंताओं से दूर मनुष्य श्वांस सुरक्षित रखने की चुनौती से लड़ रहा था वहीं भारतीय शिक्षा प्रणाली का आकस्मिक बदलाव कुछ भ्रामक सा लगा तो काफी हद तक नई दिशा का अवलोकन करने वाला था। नई शिक्षा नीति की कमेटी में शामिल एक प्रोफेसर से वार्तालाप के दौरान यह सुस्पष्ट हुआ कि – सरकार ने इस बात पर अध्ययन कराया कि आखिर वे कौन सी खूबियाँ थीं जिसके कारण भारत देश शिक्षा, व्यापार, कला व संस्कृति में अग्रणी रहा। पुनराध्ययन करने पर कुछ मुख्य बातें जो स्पष्ट थीं वह ये कि – वैदिक काल में ज्ञात विविध उद्योगों तथा शिल्पों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान 'तक्षक' (बढ़ई) का था। इस महत्व का कारण इस शिल्प की सामाजिक उपादेयता थी। तत्कालीन समाज में युद्ध आर्य जनजीवन का एक प्रमुख अंग था जिसमें रथ का प्रयोग होता था। तक्षक इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए तथा रथ दौड़ में लोगों के मनोरंजनार्थ प्रयोग में आने वाले रथों का निर्माण करते थे। कृषि कर्म तथा वाणिज्य व्यापार में उपयोग में आने वाली गाड़ियों (अनुस) तथा नावों का निर्माण भी इन्हीं के द्वारा होता था। लोहे को गलाकर घरेलू, युद्ध संबंधी, कृषी संबंधी सामग्री, तैयार की जाती थी। 'कर्मार' अथवा लुहार ये सामग्री तैयार करते थे। 'चर्मण' नमक शिल्पी चमड़े की वस्तुएं बनाते थे। धनुष की प्रत्यंचा, ढ़ोल – नगाड़े, चमड़े की रस्सियाँ, थैलों आदि का निर्माण कार्य किया करते थे। इन धातुओं के अतिरिक्त मिट्टी के भी पात्र बनाए जाते थे। लोग सूत कातना, कपड़ा बुनना भी जानते थे और ये सभी उद्योग काफी उन्नत अवस्था में थे। इन वस्तुओं का व्यापार भी किया जाता था। "कीथ इत्यादि कुछ योरोपीय विद्वानों का विचार रहा कि – आर्य लोग समुद्र तथा सामुद्रिक यात्रा से परिचित नहीं थे, किन्तु मैक्समूलर, लैसेन, जैमर, ए॰ डी॰ पुसालकर आदि कई विद्वान यह मानते हैं कि आर्यजन समुद्र से भली – भांति परिचित थे। एक स्थान पर सौ बल्लियों से चलाई जाने वाली नाव का उल्लेख हुआ है। इतनी बड़ी नाव का उपयोग सामुद्रिक आवागमन के लिए ही होता रहा होगा।"1 (ज़ाकिर पठान, इतिहास विश्वकोश खंड – 1, पृ॰ – 98, प्रकाशन – चंद्रलोक कानपुर, वर्ष – 2017) इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि मुगलों और अंग्रेजों के शासन से पूर्व भारत की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। उस समय के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक नियमों के अनुपालन से यह

देश एक बार पुन: अपना पहले वाला वर्चस्व स्थापित कर सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर नई शिक्षा नीति कि बुनियाद रखी गई और व्यापक आयाम इस दिशा में निकाले गये। उद्देश्य यही कि आखिर भारतीय शिक्षण प्रणाली को व्यावसायिक प्रारूप किस प्रकार दिया जाये, आत्म निर्भर भारत कैसे बनाया जाये आदि। शिक्षण संस्थाएं भी उल्लास व तन्मयता से इस कार्य में जुड़ी हैं कि आखिरकार किस प्रकार पाठ्यक्रम डिज़ाइन किया जाये, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की सरल शिक्षण विधि कैसे बनाई जाये। भारत का बाजारवाद बहुत बड़ा है परंतु यह सीमित कुछ कारीगरों तक ही। ऐसी बहुत सी कलाएं और गुण हैं जिनका अंत उस गुणी व्यक्ति के मृत्यु के साथ ही हो जा रहा है जो इसके जानकार हैं। अब इसके सुरक्षा की चिंता में भारत सरकार व्यापक प्रयास कर रही है परंतु जब तक शैक्षिक संस्थाएं इसका हिस्सा नहीं बनेंगी संख्या कम ही रहेगी। शायद इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर व्यावसायिक कौशल शिक्षा के विकास पर बड़ी मात्रा में कार्य किए जा रहे हैं। बनारस की कई हस्त, शिल्पकला को सुरक्षित रखने के लिए कई संस्थाएं अग्रसर होकर कार्य कर रही हैं। सरकार का सहयोग पूर्ण रूप से उन्हें प्राप्त है। इसी प्रकार राजस्थान की हस्तकला को सुरक्षित रखने के लिए संस्थाएं कार्य कर रही हैं। अब जो बारी है वह है – शैक्षिक संस्थाओं की। पहली चुनौती कोर्स डिज़ाइन की है और दूसरी पाठ्यक्रम की सामग्री को लेकर है। आखिर इसकी सरल और ग्राह्य शिक्षण विधि किस पैमाने पर तैयार किया जाए यह चुनौती है और इसका समाधान पाने पर संभावनाएं किस प्रकार निकल सकती हैं इस पर भी ध्यान आवश्यक है। शिक्षण हेतु पाठ्यक्रम और सामग्री तैयार करने की चुनौती तो हैं परंतु दुर्लभ तो नहीं है। विचार, मंथन करने पर जो कुछ बातें मन में स्पष्ट हुईं उसे ही संक्षेप में विश्लेषित कर रही हूँ।

यह सर्वविदित है कि मनुज में जितनी मनुष्यता या संस्कार होते हैं वे सब उसे काफी हद तक अपने परिवार व परिवेश से ही प्राप्त होते हैं। साथ ही परिवार में जो बुजुर्ग होते हैं वे एक परिपूर्ण गुण के भंडार होते हैं। वे विज्ञान व तकनीकी को तो भोगे नहीं होते परंतु उनकी कार्यप्रणाली की जो नियमावलियाँ होती हैं वह इतनी सुघर, टिकाऊ और दुरुस्त होती हैं कि उनके समक्ष आज के तमाम वैज्ञानिक संसाधन भी लोहा मानते हैं। विडम्बना यह है कि उस पीढ़ी के अंत होने के साथ उसका ही अंत नहीं होता अपितु उन तमाम सिद्धान्त, गुण और लोकाचार – व्यवहार का भी अंत हो जाता है जिनसे वे समृद्ध थे। आवश्यकता है कि अपने व्यस्त समय में से समय निकालकर उनके साथ समय बिताया जाए और उनके मौखिकी को लिखित तौर पर संचित किया जाये। तदुपरान्त गहन अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला जाये कि संकलित वार्तालाप में किसको प्राथमिकता दी जाये और क्रमानुसार रूपरेखा तैयार करके उसकी सैद्धांतिकी निकाली जाये। उन धरोहर को डिजिटल वर्सन में प्रस्तुत किया जाये। उसमें सन्निहित अपार संभावनाओं को महत्वपूर्ण बिन्दुओं सहित दर्शाया जाये। इस प्रकार इस प्रक्रिया से जहां एक ओर हम विकास के नए आयाम स्थापित करने में सफल होंगे वहीं दूसरी ओर अपनी पीढ़ी की विचार को भी अमर कर लेंगे।

दूसरा जो महत्वपूर्ण पक्ष है वह है परिवेश भ्रमण और सर्वेक्षण। किताबी और रटंतु विद्या के कारण हमारे छात्रों की मौलिकता, सृजनात्मकता और प्राकृतिक जुड़ाव कमतर होता जा रहा है। पक्षियों का कलरव, सूर्य की अरुणिमा, परिशुद्ध वातावरण का ही उपभोग हमारी युवा पीढ़ी नहीं कर पा रही है तो क्षेत्रीय परिभ्रमण और सर्वेक्षण की अपेक्षा उनसे कैसे की जा सकती है? विशेष यह है कि हमारा देश, देश के सभी राज्य, राज्य के सभी नगर और ग्राम इतने अधिक समृद्ध हैं कि अथाह संपदा उसमें समाई है परंतु 'कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूँढे वन माहि' वाली स्थिति चरितार्थ हो रही है। विदेशी सोना पाने की खातिर स्वदेशी हीरे को अनदेखा किए जा रहे हैं। व्यावसायिक कौशल शिक्षा के लिए मूल पढ़ाई के साथ ही साथ अन्य पाठ्यक्रम दो सेमिस्टर या चार सेमिस्टर, चार से छ क्रेडिट का कोर्स चलाना आवश्यक है, जिसमें अब तक समुचित ढंग से सफलता कम ही मिली है। शिक्षक भी पढ़ाते समय छात्रों से देश – विदेश, दूर दराज की बातें तो संदर्भानुसार करते हैं परंतु बगल में ही छिपे अपने क्षेत्रीय सौंदर्य, उत्पादन के साधन और व्यावसायिक विकास के पैमाने को नहीं दिखा पाते। व्यावसायिक शिक्षा के अध्ययन और अध्यापन में श्री गणेश अपने ही परिवेश व क्षेत्र से करना चाहिए। मंथन इस बात पर होना चाहिए कि क्या हमारे क्षेत्र की कोई ऐसी विशेषता है जिससे कोई लघु उद्योग खड़ा किया जा सके ? क्या ऐसी कोई हस्त कला या शिल्प कला है जिसे विस्तार देने की आवश्यकता है ? इस दृष्टिकोण से अगर हम सब अपने परिसर का निरीक्षण करेंगे तो अवश्य हे पायेंगे कि ऐसी अनेक कलाएं व गुण हैं जिनका प्रशिक्षण

दिया जा सकता है । छात्रों और अध्यापकों को जोड़ा जा सकता है । क्षेत्रीय कौशल के विकास हेतु कार्य करने की महती आवश्यकता है । क्षेत्रीय कौशल को सीखने में सुविधा भी होगी क्योंकि छात्रों को क्षेत्रीय भाषा में प्रशिक्षण प्रदान करना सुगम होगा तथा सुगमता से सीखा गया कार्य दीर्घकालीन रहता है, सहज होता है साथ ही भाषा का संरक्षण भी होते चलता है । इस कार्य को विस्तार देने में सेवा निवृत्त प्राध्यापक, गृहणियाँ, तकनीकी स्कूल या पॉलटेकनीक स्कूल के प्रशिक्षणदाता सहयोगी बन सकते हैं । सेवा निवृत्त प्राध्यापक अपने अनुभव के साथ जो पक्ष उनके समय में छूट गया था और जिसे वे एक नया आयाम देना चाहते हैं, इस प्लेटफॉर्म पर अपनी प्रतिभा के साथ न्याय कर सकते हैं तथा छात्रों के बेहतर भविष्य का निर्माण कर सकते हैं । गृहणियाँ कई स्तर पर अपना योगदान दे सकती हैं । घरेलू साज – सज्जा के तौर तरीके, अल्प राशि में कार्य संचालन, खाद्य सामग्री यथा – अचार – मुरब्बे, पराठे, डोसा, जेली, जेम आदि को दीर्घावधि तक कैसे सुरक्षित रखा जाये तथा उसे व्यापरोपयोगी कैसे बनाया जाये – यह सारी सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी भारतीय गृहणी से अधिक कोई भी नहीं दे सकता । इस प्रकार छात्रों से फील्डवर्क के द्वारा ये समस्त जानकारी एकत्रित कराना, उसके सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष का विश्लेषण निकालना, व्यवसयिक आकड़ें प्रस्तुत कर एक सुनिश्चित दिशा में कार्य किया जा सकता है । व्यावसायिक कौशल की शिक्षा आज नए प्रारूप में केंद्र का विषय अवश्य है परंतु कुछ प्रदेशों में यह कार्य कई वर्षों से चल रहा जिसकी अब तक कोई विशेष पहचान नहीं बन पाई है । उत्तर – प्रदेश में खाद्य – संस्थान मंत्रालय है । इस संस्थान के प्रशिक्षक , नगरीय व ग्रामीण स्तर पर स्कूलों में जा कर नि : शुल्क प्रशिक्षण देते हैं । यह कार्यशाला लगभग एक से दो महीने का होता है । इसमें सप्ताह में तीन सैद्धान्तिक और तीन व्यावहारिक कक्षाएं चलाई जाती हैं । सन् 1998 में मुझे भी इस प्रशिक्षण में प्रतिभाग का अवसर प्राप्त हुआ था परंतु अल्पज्ञता के कारण इसके महत्व को न ही सीख पाई और न ही आत्मसात कर पाई । इसका अफसोस अब है, जबकि प्रमाण – पत्र आज भी मेरे पास है । यह एक छोटा सा उदाहरण है, जबकि हर राज्य में ऐसी बहुत सी सरकारी संस्थाएं हैं । बस आवश्यकता है इनके नवीनीकरण और डिजिटल वर्सन की । ऐसा करने पर निसंदेह बहुत कुछ कि आज स्वरोजगार और उद्यमिता के अध्ययन पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है । इसके व्यापक स्थापना के लिए जब तक हम लोक के अंचल में नहीं जायेंगे तो समृद्ध संपदा से वंचित ही रह जायेंगे । लोक में अमूल्य निधियाँ हैं जिनका मनुज उपभोक्ता भी बनता है और दोहन भी करता है, प्रदूषण भी फैलाता है । लोकाचार के आचरण में थोड़ी बहुत सहूलियत होती है । लकड़ी की बिनाई करने वाले, दीवार पर चित्रकारी करने वाले, काँस के कारीगरों के पास हस्त कलाएं हैं वह आधुनिक मशीनों से किसी भी मामले में कम नहीं हैं । दुर्भाग्य बस यह होता है कि शहर में संसाधन और सम्पन्न कलाकार हैं, वे अपने उत्पादन का प्रचार – प्रसार भरपूर कर लेते हैं और अपने आपको व्यापक तौर पर स्थापित कर लेते हैं जबकि लोक में निवास करने वाले कलाकार अधिक परिश्रमी और उद्यमी होने के उपरांत अपने हुनर को सही तरह दर्शा भी नहीं पाते और आर्थोपार्जन भी ठीक से नहीं कर पाते । उनके श्रम का शोषण नागर कलाकार कभी कभी आसानी से कर लेते हैं क्योंकि अपना मार्क लगाना गाँव के लोग नहीं जानते । उनसे कम दाम में सामग्री खरीदकर चार गुना में बेचते हैं वह भी अपने नाम पर । पाठ्यक्रम की सामग्री में जिस क्षेत्र की कला को शामिल करने की योजना हो वहाँ के कलाकारों के नाम और उनके कार्य शैली की विशिष्टता को अवश्य जोड़ना चाहिए । साथ ही उनकी शब्दावली पर भी ध्यान देना चाहिए । गौरतलब है कि कलाकार हमारे देश का है और उसके कार्य से संबन्धित शब्दावली से हम अपरिचित होते हैं । इसकी सरल विधि यह होगी कि लघु कथा और नाटकों का सृजन उस संदर्भ में किया जाए । उसमें उन शब्दावलियों का प्रयोग और अंत में शब्दार्थ भी निहित हो । इस प्रक्रिया से भारतीय भाषा और भारतीय कला दोनों कौशल एक साथ विकसित किए जा सकते हैं । भारत की अर्थ व्यवस्था और समाजिक ढांचे के लिए लघु और कुटीर उद्योगों का बहुत महत्व है । ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित सफल कुटीर उद्योग ग्रामीण युवाओं के शहरों की ओर पलायन को रोकते हैं । एक ओर ये घरेलू और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध साधनों का इस्तेमाल करते हैं, वहीं दूसरी ओर ये अपेक्षाकृत कम प्रदूषण फैलाते हैं । ई-लर्निंग, वेब आधारित शिक्षा तथा दूरस्थ शिक्षा , कार्यशाला के प्रशिक्षणों के माध्यम से इसका विस्तार किया जा सकता है ।